दुनिया के मजदूरो एक हो!

बिगुल

मासिक बुलेटिन • अंक 5
सितम्बर 1996 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

इलेक्शन या इंकलाब?

सच्चाई से नजरें मिलाने की हिम्मत करो! सही राह चुनने का संकल्प बांधो!!

अभी लोकसभा के चुनावी नौटंकी और सरकारों के बनने-बिगड़ने का अध्याय समाप्त ही हुआ था कि उत्तर प्रदेश में चिर-प्रतीक्षित विधानसभाई चुनाव की घोषणा हो गयी। केन्द्रीय सुअरबाड़े में चीख-पुकार, गाली-गलौज, हल्ला-गुल्ला, धींगा-मुश्ती, कुत्ताघसीटी के फूहड़ नौटंकी के बाद अब उत्तर प्रदेश में भी चुनावी मेला सजने लगा है। गेरुआ चोंगे और चिमटे वाले तरह-तरह के चमत्कार दिखाने लगे हैं। भांड स्वांग रच रहे है। नट-बाजीगर तमाशे दिखा रहे हैं। जादूगर पत्ते फेंट रहे हैं और चुनावी वायदों की टोपी से करिश्माई खरगोश निकाल रहे हैं। जमूरे मदारियों की पुकार का इन्तजाम कर रहे हैं।

विगत लोकसभा चुनाव की भांति वर्तमान विधान सभा चुनाव में भी मेहनतकश जनता को चुनना सिर्फ यह है कि चोरों-लुटेरों-ठगों-अपराधियों का कौन सा गिरोह उस पर शासन करेगा? सवाल सिर्फ यह है कि बहसबाजी के इस अड्डे में सवाल कौन करेगा और ज़वाब कौन देगा? सवाल सिर्फ यह है कि संसदीय सुअरबाड़े में किस नस्ल के सुअर किधर बांधे जायेंगे।

विधानसभा का वर्तमान चुनाव पूंजीवादी व्यवस्था के ऐसे दौर में होने जा रहा है जब बुर्जुआ जनवाद अपने रूप तथा अपनी अन्तर्वस्तु दोनों में ही लगभग पूरी तरह क्षरित हो चुका है। पूंजीवादी लोकतंत्र के इस नाटक से न सिर्फ जनता का ही भरोसा पूरी तरह उठ चुका है बल्कि, इस पूरी नौटंकी को आगे जारी रख पाने में इसके सूत्रधारों-पूंजीपति वर्ग और उसके किराये के भाड़ों-संसदीय राजनीति के खिलाड़ियों का आत्मविश्वास भी डगमगा चुका है। उनकी चमक-दमक समाप्त हो चुकी है। उनके नारे चूक गये हैं। लोकरंजक नारों की लोक लुभावन क्षमता खत्म हो चुकी है। अब वे आम जनता को आकर्षित करने की क्षमता पूरी तरह से खो चुके हैं। सत्ताधारी वर्ग के टुकड़खोर बुद्धिजीवियों की पूरी जमात अपनी तमाम दिमागी कसरतों के बावजूद ऐसा कोई भी नारा ढूंढ पाने की कुव्वत खो चुकी हैं जो आम जनता को सत्ताधारी वर्ग के किसी भी खेमे में लाकर खड़ा कर दे।

दूसरी तरफ आम जनता के हितों और शासक वर्ग के हितों के बीच खाई अब इतनी चौड़ी हो चुकी है कि दोनों को जोड़ने वाले किसी पुल का निर्माण असम्भव हे सत्ताधारी वर्ग के किसी भी धड़े के हित आम जनता के हितों से मेल नहीं खा सकते। चाहें वह मजदूरों की छंटनी का सवाल हो अथवा साम्राज्यवादी पूंजी को लूटने के लिए दी गयी खुली छूट का सवाल - समग्रता में कहें तो नयी आर्थिक नीतियां, शासक वर्ग के सभी धड़ों - सभी पार्टियों

(पेज 8 पर जारी)

पूंजीवादी राज्य में सार्वजनिक उद्योग : श्रमशक्ति के सार्वजनिक लूट का जरिया

पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का नियम है कि उद्यम तभी तक फलेगा-फूलेगा तब तक श्रमिकों की श्रम शक्ति के दोहन की दर लगातर बढ़ती रहे, उत्पादों के विक्रय की कोई समस्या न हो, कच्चा माल आसानी से सस्ते दर पर उपलब्ध होता रहे। इन परिस्थितियें को बनाये रखने के लिए श्रमिकों के अतिरिक्त श्रम से पैदा हुए मुनाफे को कारखाने में तकनीकी के विकास, उत्पादन की परिस्थितियों को सुधारने और बाजार पर नियन्त्रण बनाये रखने में खर्च करना होता है। यदि पूरा का पूरा मुनाफा लगातार कारखाने से बाहर ले जाया जाता रहेगा तो वह कारखाना दूसरे क्षेत्रों को विकसित करने का सिर्फ साधन बन कर धीरे-धीरे बरबादी के कगार पर पहुंच जायेगा।

अपने देश में सार्वजनिक उद्योग इसी तर्ज पर कायम किया गया। आम जनता के मेहनत के पैसे से खड़े किये गये ये उद्योग, श्रमिकों के श्रम शक्ति का दोहन करके देश के निजी क्षेत्र को पनपाने का काम शुरू से ही कर रहे हैं। शुरूआती दौर में इस देश के पूंजीपति वर्ग के लिये पूंजी की गम्भीर समस्या थी। यदि सीधे तौर पर पूंजीपति जनता से पैसा वसूलते तो आजादी की लड़ाई की उर्जा से भरी जनता इनके खिलाफ हो जाती। ऐसे में आसान रास्ता यही था कि सरकार को बिचौलिया बनाकर यह काम किया जाय। वे सभी उद्योग जिसमें काफी अधिक पूंजी की जरूरत थी, तथा जिनमें मुनाफा शुरू में कम दर से पैदा होता, सार्वजनिक क्षेत्र में आये। इनमें उत्पादित मालों का इस्तेमाल करके आम उपभोक्ता वस्तुएं तैयार करके तुरन्त लाभ अर्जित करने का जिम्मा निजी क्षेत्र ने लिया। सरकारी क्षेत्र अपने उत्पादों को लगभग नहीं के मूल्य पर निजी क्षेत्रों को बेचते थे, इससे इनके लाभों में कई गुना वृद्धि लगातार होती गयी और सरकारी उद्यम तबाह होते गये।

इस प्रक्रिया को स्कूटर्स इंडिया प्रकरण में भली-भांति देख सकते हैं।

स्कूटर्स इंडिया के मजदूर आन्दोलन की राह पर क्यों?

इसकी स्थापना की शुरुआत से ही जनता के पैसे की लूट शुरू हो गयी। इटली से एक रिजेक्टेड स्कूटर कारखाना दूने दाम पर खरीदा गया। अतिरिक्त दाम बिचौलियों, अधिकारियों एवं नेताओं की जेब में बिना किसी रुकावट के चला गया। खस्ता हाल मशीनों को श्रमिकों ने अपने हुनर से चलने योग्य बनाकर स्कूटरों का उत्पादन शुरू कर दिया, यह उत्पाद चल निकला। अब शुरू होती है मुनाफे का हस्तान्तरण। स्कूटर बनाने के लिए तमाम आवश्यक कल-पुर्जे खुले बाजार से खरीदने के रास्ते निजी पूंजीपतियों को मुनाफे का बड़ा हिस्सा हस्तान्तरित किया जाने लगा। मुनाफे की शेष रकम के दूसरे हिस्से को दिल्ली की एक पंखा कम्पनी में एवं लखनऊ की एक इंस्ट्रूमेन्ट कम्पनी में लगाया गया जो कभी भी लौटकर स्कूटर्स इंडिया में नही आया।

बचे हुए मुनाफे का अन्य बड़ा भाग अफसर, प्रबन्धकों एवं दलाल नेताओं के बीच बटता रहा। इस तरह श्रमिकों के श्रम की लूट शुरू हो गयी। इन सबके बावजूद श्रमिक उत्पादन बढ़ाते रहे तथा अपने उत्पाद की गुणवत्ता सुधारते रहे जिससे बजाज जैसी स्कूटर कंपनियों का बाजार छिनने लगा। यही नहीं स्कूटरों के कई नये देशी माडल भी तैयार किये गये जो पूरे बाजार पर छा जाने की क्षमता रखते थे। इस खतरे को भांपकर बजाज ने इस स्कूटर कम्पनी पर कब्जा करने की एक दूरगामी योजना बनाई। सरकार पर दबाव डालकर नये माडलों पर उत्पादन कार्य रोक दिया गया, जबकि विदेशों से भी बड़े आर्डर मिल चुके थे। इन माडलों के अधिकार खुद खरीदकर स्कूटर्स इंडिया के तकनीकी विकास को अवरूद्ध कर दिया। परिणामस्वरूप कंपनी को घाटे में जाना ही था, उचित समय पर बजाज ने सरकार से कंपनी खरीदने की पेशकश की। बहुत ही कम दामों पर सौदा तय हो गया, लेकिन इसी समय सौदे की जानकारी मिलते ही मजदूरों का आक्रोश भड़क उठा और आंदोलन का ज्वार उठ खड़ा हुआ। नेताओं की दोहरी नीति ने इस संघर्ष को कमजोर करके जीत को हार में बदल दिया। फैक्टरी बिकी तो नहीं, बन्द हो गयी। इस यूनिट

(पेज 6 पर जारी)

आपस की बात

मजदूर कहलाने में लोग तौहीन समझने लगे हैं!

एक दिन अपनी शिफ्ट से लौटते हुए एच०ए०एल० कारखाने के गेट पर कुछ युवकों को उत्साह, समर्पण एवं पूर्ण मनोयोग से हाथ में 'बिगुल' लिये बेचते देखा। एक बुद्धिजीवी मजदूर होने के नाते एक युवक के पास रुक गया, कुछ बातें कीं। लगा कि इस अखबार में कुछ खास बात है, जिन्दा अखबार है, तभी इसके साथ उत्साही, समर्पित कार्यकर्ता लगे हैं। हो सकता है धनाभाव हो, अतः दैनिक, साप्ताहिक या पाक्षिक न निकाल पा रहे हों, परंतु खड़े-खड़े कुछ लेख व कविताएं पढ़ डालीं और ऐसा लगा कि इन्हे स्थिर चित्त से बैठकर पढ़ना चाहिए।

ए०के०दत्ता की कविता 'फर्क' एवं अली सरदार जाफरी की कविता 'कौन आजाद हुआ' ऐसी रचनाएं हैं जैसी अब बहुत कम पढ़ने को मिलती हैं।

कात्यायनी के लेख में एक बात जो हृदय को गहरे तक कुरेदती है, जिसे कहीं किसी ने नहीं कहा कि आई०ए०एस० रुपन देवल बजाज के साथ छेड़छाड़ पर गिल को सजा दी गई पर बलात्कार की शिकार असंख्य निर्धन बेसहारा महिलाओं के लिए न्याय पंगु है। इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि न्यायपालिका भी अब धनिकों व नौकरशाहों की रखैल बनती है।

एक बात और। बाइस वर्षों से एच०ए०एल० में एक जागरूक मजदूर होने के नाते अपना अनुभव यह है कि आज मजदूरों में विलासिता की हवस जग रही है, क्रांति सो रही है, सब मुर्दे हो रहे हैं। कलर टीवी, स्कूटर, फ्रिज, डबलबेड, अन्य सब विलासिता की सामग्रियां इन्हें भी चाहिए चाहे कर्ज लेकर ही खरीदें। परन्तु दो रुपये का अखबार 'बिगुल' (जो मासिक है) एच.ए.एल. के मजदूरों में बेचना एक मुश्किल कार्य है। 3000 लोगों में तीन खरीद लें तो बड़ी बात है। अब तो मैंने देखा है कि मजदूर कहलाने में सरकारी कर्मचारी अपनी तौहीन समझते हैं।

कृपया अपने अखबार के माध्यम से यह बताने का प्रयास करें कि क्या आज विश्व के किसी भी देश में कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों पर पूरी तरह सफलतापूर्वक चल रही हैं। रूस एवं चीन में जो हुआ अथवा हो रहा है, उनकी असफलता के मूल कारण क्या हैं तथा क्या भारत में उन सिद्धान्तों पर जनसाधारण को जगाकर सफल क्रांति का उत्थान फिर सम्भव है!

- जनेश्वर तिवारी 'अनुभवी'
एच०ए०एल०, लखनऊ

प्रिय साथी,

हमारा दृढ़ विश्वास है कि भारत में एक नई समाजवादी क्रांति के बिना मजदूरों-किसानों और मेहनतकश जनता की किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढांचे पर मेहनतकशों का अधिकार कायम करने वाला क्रांतिकारी लोक स्वराज ही आज हमारी आंखों में घूरते सैकड़ों सवालों का जवाब हो सकता है।

दुनिया में आज कहीं भी मजदूरों का अपना राज कायम नहीं रह गया है। पूंजीवाद के साथ चल रहे लम्बे महासमर में कुछ शानदार जीतें हासिल करने के बाद सर्वहारा वर्ग को फिलहाल पीछे हटना पड़ा है। रूस, चीन और पूर्वी यूरोप के देशों में पूंजीपति वर्ग फिर से सत्ता पर काबिज है और कई वर्षों तक चले राजकीय पूंजीवाद के खोल से बाहर आने के बाद अब वहां नग्न बाजार अर्थव्यवस्था ने जनता पर कहर बरपा करना शुरू कर दिया है। पूंजीवादी मीडिया ने समाजवाद के असफल हो जाने की जो चीख-पुकार मचाई थी, झूठ का जो घटाटोप फैलाया था, उस भेदकर अब यह सच्चाई लोगों को दिखने लगी है कि असफल समाजवाद का सिद्धान्त नहीं हुआ है, केवल कुछ प्रयोग असफल हुए हैं। एक शोषणमुक्त, वर्गमुक्त समाज की दिशा में मानवता की यात्रा में केवल कुछ विराम आये हैं, यात्रा स्थगित नहीं हुई हैं।

साम्राज्यवाद आज जितनी भी आक्रामकता दिखा रहा है उसके पीछे की सच्चाई यह है कि पूरी पूंजीवादी दुनिया भयंकर संकट से ग्रस्त है साम्राज्यवादी कागजी बाघ की गुर्राहट उसकी बौखलाहट को ही दर्शा रही है। पूंजीवाद का नुस्खा खुद बड़े पूंजीवादी देशों में भी बढ़ती बेरोजगारी, छंटनी-तालाबन्दी, बदहाली, सामाजिक विघटन, वेश्यावृत्ति, बीमार मानसिकता और अपराधों को दिन ब दिन बढ़ा रहा है। सारी दुनिया में क्रांतिकारी शक्तियां अपने को संगठित कर रही हैं और इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की दीर्घकालिक तैयारी में लगी है। भूतपूर्व सामाजवादी देशों में भी सर्वहारा वर्ग क्रांति के नये संस्करणों की तैयारी में जुट चुका है। और ऐसी खबरों को दबा देने की हरचंद कोशिशों के बावजूद यह बात लगातार स्पष्ट होती जा रही है कि उन देशों में नये पूंजीवादी शासकों के नंगनाच को देखकर जनता क्रांतिकारियों की ओर तेजी से झुक रही है।

भारत में भी आज क्रांतिकारी समाजवाद के सिद्धान्तों पर धूल-राख की मोटी पर्त जम चुकी है। खासकर मेहनतकश जनता के बीच नकली वामपंथियों ने जो भ्रम पैदा किया है उसके चलते क्रांतिकारी और जुझारू वामपंथ से लोगों को फिर से परिचित कराना आज का बेहद जरूरी काम है। इतिहास का नियम है - इस शोषणकारी व्यवस्था को जाना ही है और वास्तविक बराबरी, वास्तविक स्वतंत्रता पर आधारित समाज व्यवस्था का आना अटल है। पर यह अपने-आप नहीं होगा, इसके लिए मजदूरों-किसानों-नौजवानों को अपने एक-एक हक के लिए लड़ते हुए, हर अन्याय का विरोध करते हुए एक व्यापक संघर्ष की तैयारी का साहस करना होगा। और एक सच्चे क्रांतिकारी सिद्धान्त पर आधारित सच्ची क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण करना होगा।

'बिगुल' के आगामी अंकों में हम समाजवादी देशों में हुए शानदार प्रयोगों पर सामग्री देंगे और यह भी कि वहां क्यों और कैसे पूंजीवादी वर्ग सत्ता में लौट आया तथा भविष्य में इसे रोका जा सकना कैसे मुमकिन है। - *सम्पादक*

आज़ाद कौन है?

बिगुल का अगस्त अंक पढ़ा। दिलों-दिमाग के बन्द दरवाजे को खोलने का माद्दा रखने वाला अखबार है।

15 अगस्त को, सरकारी मशीनरी ने आजादी का जश्न मनाकर एक बार फिर हमें हमारी "आजादी" का अहसास करवा दिया। लेकिन, आज आजाद कौन है? थोड़ी संजीदगी से सोचने पर आते हैं कि आजाद तो वे हैं जो हवाला काण्ड, चारा घोटाला काण्ड, दवाई काण्ड, वर्दी काण्ड जैसे काण्डों में लिप्त हैं। मजदूरों का खून चूसने और मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई में डकैती डालने वाले आज़ाद हैं। हमारे लिए तो आज़ादी का मतलब है, जुल्म सहकर भी चुपचाप बैठे रहना। हक की बात करने की जगह मरने की आज़ादी है।

लेकिन ऐसा कब तक चलेगा? हमें अपनी सच्ची आज़ादी के बारे में सोचना ही होगा। हमें, जाति-धर्म-क्षेत्र के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलना होगा और मेहनतकश जनता के सच्ची आज़ादी के जुझारू संघर्ष में उतर पड़ना होगा।

एक कविता

खुशकिस्मत हैं वे,
जिनकी चमड़ी हो गई है
गैंडे की तरह।
संवेदनाओं, भावनाओं से रहित
हर चीज का भोग कर रहे हैं
सुअर की तरह।
कहने को तो "विश्वविख्यात, ज्ञानी
प्रकाण्ड पण्डित"
लेकिन उनकी कीर्ति फैल रही है
छछून्दर की तरह।
संविधान के कटघरे में बंधकर
ख्वाब देख रहे हैं सम्पूर्ण आज़ादी का
तो ऐ "मसीहाओं"!
गैण्डा, सुअर, छछुन्दर तुम्हें मुबारक
हम तो सपने देखेंगे
भगतसिंह की तरह।

- संतोष कुमार, बरौनी

असंगठित मजदूरों को भी क्रान्ति हेतु शिक्षित करना होगा

"बिगुल" का नियमित पाठक हूं। आप के द्वारा मजदूर और निम्नवर्गीय चेतना का प्रसार कार्य वास्तव में बहुत ही सराहनीय है। यह समय की मांग है कि आज का बुद्धिजीवी वर्ग इस दिशा में सोचे और अपने उत्तरदायित्व का पालने करे। आज भारतीय जनमानस के सामने अपने राजनीतिक ढांचे के पुनर्निमाण का समय आ गया है। किन्तु भारतीय जनमानस अभी भी जातिवाद-धर्मवाद और सांस्कृतिक आत्मप्रवंचना का शिकार होकर झूठे अहम् भाव में फंसा हुआ है। खुद को महान तपस्वियां और ऋषियों की संतान कहने वाला इस देश का नागरिक आज दिन पर दिन गरीबी-बदहाली कुपोषण और अशिक्षा का शिकार होता जा रहा है और इस पर तुर्रा यह कि मेरा भारत महान।

राजनीतिक पार्टियों का चरित्र तो कब का नंगा हो चुका है। जैसाकि बिगुल के जून अंक में था कि सरकार चाहे जिसकी बने वह पूंजीवादी सडांध को बढ़ायेगी ही। आज कोई पार्टी मण्डलराग के सहारे जी रही है तो कोई हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान का बरगलाने वाला नारा दे रही है। तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियां भारतीय लोकतंत्र में संसद में बैठे पेप्सी और केंटकी फूड का आनन्द ले रही है।

आज जिस लोकतंत्र का सब्जबाग पूंजीवादी राजनीति शास्त्री दिखाते आ रहे हैं वह वास्तव में अत्यन्त ही भ्रमपूर्ण एवं अव्यावहारिक है।

चूंकि बिगुल का उद्देश्य ही सर्वहारा क्रान्ति और मजदूर आन्दोलन का प्रचार-प्रसार है अतः आप उन्हें उनके अधिकारों और हितों का ध्यान दिलाते हुए उन सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं तथा जाति, संस्कृति, सभ्यता व धर्म के भ्रम मूलक और औचित्यविहीन तत्वों की भी आलोचनाएं करें क्योंकि ये उनकी एकता में सबसे बड़े बाधक हैं। किस प्रकार जातिगत पूर्वाग्रह और महज झूठी सांस्कृतिक आत्मप्रवंचना मजदूरों और सर्वहारा वर्ग के बीच भेदभाव के अनेकों बीज बो देती है और वे अपने हितों के लिए सुसंगठित नहीं हो पाते या हो भी जायें तो दूरगामी एकता कायम नहीं कर पाते। शुरू से ही उनकी मानसिकता इस प्रकार बना दी जाती है कि उनकी राजनीतिक व सामाजिक महत्वाकांक्षा या तो जन्म ही नहीं लेती या कुण्ठित हो जाती है।

हमें घोर निराशा में घिरे इन असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को भी क्रान्ति के अग्रगामी दल के रूप में तैयार करना होगा। उन्हें क्रान्ति हेतु शिक्षित करने के बाद ही आशा की जा सकेगी कि वे अपने पांव की बेड़ियों को खोकर सम्पूर्ण विश्व विजय कर सकेंगे।

- भास्कर, करहल, गोरखपुर

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

(1) 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

(2) 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

(3) 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

(4) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा ही कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

(5) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आहानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा० दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ
- जनचेतना, जाफरा बाजार गोरखपुर
- विजय इन्फारमेंशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर
- विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर–273402
- ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड़, निशातगंज, लखनऊ
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7)
- सत्यन वर्मा, यूनीवार्ता, काज़मी चैम्बर्स, 5 पार्क रोड, लखनऊ
- राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ
- अरविन्द सिंह, 123, बिड़ला छात्रावास, बी०एच०यू० वाराणसी
- डा. डी०क०. सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A–308 आवास विकास (गंगापुर), रामपुर–244901
- प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविधालय, पन्तनगर–263145
- राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, जि० – अम्बेडकरनगर
- एतकाद अहमद, डिपार्टमेंट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- संतोष शर्मा, Q-No -L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय
- चन्द्रकेतु नरायण शर्मा, एडवोकेट, सांचीपट्टी, बागगली गाछी, स्थान–पो–हाजीपुर, जि–वैशाली
- दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर
- मैत्रेयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के.डी.एस. दरभंगा–846004
- अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव द्वारा शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, मेंहसी, पूर्वी चम्पारण
- जनार्दन थापा, लुकसान बाज़ार, पो.कैरन जि. जलपाई गुड़ी – 735205
- डा.हरियश राय, ए–205 सुजल अपार्टमेंट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद–380054
- पुस्तक–पत्रिका बिक्री–वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार चढ़ाव के पास (निकट पद्म कन्या स्कूल), काठमांडू
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाईन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल
- जलजला पुस्तक सदन, धमवोजी चौक, नेपालगंज बांके, नेपाल

जन्मदिवस (27 सितम्बर) के अवसर पर

श्रमिको चलो, किसान चलो
छात्रो चलो, जवान चलो
खेत और खलिहान चलो
फैक्ट्री और खदान चलो
भगतसिंह की राह चलो
नई क्रांति की राह चलो।

(23 वर्ष की उम्र में फांसी का फंदा चूम लेने वाले, भारतीय क्रांति के प्रतीक पुरुष, शहीदे आज़म भगतसिंह के विचार उनके छोटे से जीवन के अन्तिम दिनों में, वैज्ञानिक समाजवाद की दिशा में तेजी से विकसित हो रहे थे। वे इस नतीजे पर पहुंच चुके थे। वे इस नतीजे पर पहुंच चुक थे कि साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष पूंजीवादी समाज व्यवस्था को नष्ट करके सर्वहारा वर्ग की सत्ता कायम करके और समाजवादी समाज बनाने की एक कड़ी के रूप में ही सार्थक हो सकता है। उनका यह मानना था कि राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा के कांग्रेसी नेतृत्व को पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि मानते थे। उनका मानना था कि यदि राजनीतिक आज़ादी कांग्रेस के नेतृत्व में होगी तो वह अधूरी होगी। साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए उन्होंने मेहनतकश अवाम को नए सिरे से क्रांतिकारी संघर्ष छेड़ने का आह्वान किया था।

भगतसिंह ने सर्वहारा क्रांति के लिए मजदूरों और किसानों के व्यापक जन संगठनों का निर्माण करने के साथ ही, एक भूमिगत क्रांतिकारी, अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की ज़रूरत को भी अनिवार्य बताया।

भगतसिंह के जन्मदिवस के अवसर पर यहां हम उनके द्वारा फांसी पर चढ़ने के ठीक पहले तैयार किये गये ऐतिहासिक दस्तावेज़ **'क्रांतिकारी कार्यक्रम का मसविदा'** का एक महत्वपूर्ण अंश प्रकाशित कर रहे हैं। - ***सम्पादक***)

एकमात्र रास्ता - श्रमिक क्रांति

● भगतसिंह

क्रांति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ एक ही अर्थ हो सकता है – जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रांति', बाकी सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूंजीवादी सडांध को ही आगे बढ़ाते हैं। किसी भी हद तक लोगों से या उनके उद्देश्यों से जतायी हमदर्दी जनता से वास्तविकता नहीं छिपा सकती, लोग छल को पहचानते हैं। भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को – भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं – आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयां, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक–दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रांति है। कोई और चीज इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। सभी विचारों वाले राष्ट्रवादी एक उद्देश्य पर सहमत हैं कि साम्राज्यवादियों से आजादी हासिल हो। पर उन्हें यह समझने की जरूरत है कि उनके आन्दोलन की चालक शक्ति विद्रोही जनता है और उसकी जुझारू कार्रवाईयों से सफलता हासिल होगी। चूंकि इसका सरल समाधान नहीं हो सकता, इसलिए स्वयं को छलकर वे उस ओर लपकते हैं, जिसे वे आरजी इलाज, लेकिन झटपट और प्रभावशाली मानते है – अर्थात चन्द सैकड़े दृढ़ आदर्शवादी राष्ट्रवादियों के सशस्त्र विद्रोह के जरिए विदेशी शासन को पलटकर राज्य का समाजवादी रास्ते पर पुनर्गठन। उन्हें समय की वास्तविकता में झांककर देखना चाहिए। हथियार बड़ी संख्या में प्राप्त नहीं हैं और जुझारू जनता से अलग होकर अशिक्षित गुट बगावत की सफलता का इस युग में कोई चांस नहीं है। राष्ट्रवादियों की सफलता के लिए उनकी पूरी कौम को हरकत में आना चाहिए और बगावत के लिए खड़ा होना चाहिए। और कौम कांग्रेस के लाउडस्पीकर नहीं है, वरन् वे मजदूर–किसान हैं, जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है। राष्ट्र स्वयं को राष्ट्रवाद के विश्वास पर ही हरकत में लायेगा, यानी साम्राज्यवाद और पूंजीपति की गुलामी से मुक्ति के विश्वास दिलाने से।

हमें यह याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रांति के अतिरिक्त न किसी और क्रांति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।

श्रम कानून और पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिकों का कानूनी-गैर कानूनी शोषण

आज देश के हर कोने में बड़े पैमाने पर कारखानें, मिलों का निजीकरण व तालाबन्दी हो रही है और श्रमिक वर्ग सड़कों पर मरने खपने के लिए छोड़ा जा रहा है। बिगुल की एक टीम द्वारा हाल ही में लखनऊ व इर्द-गिर्द के कारखानों व मिलों का निरीक्षण करने पर जो तथ्य सामने आये, इससे यह साफ पता चलता है कि श्रमिकों ने अपने संघर्षों से इस व्यवस्था में जो सीमित कानूनी अधिकार प्राप्त किये थे आज उन्हें भी एक-एक करके छीना जा रहा है।

स्कूटर इंडिया लिमिटेड के तकरीबन एक हजार कर्मचारियों को फैक्टरी को घाटे में बताकर और तालाबन्दी का डर दिखाकर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने को विवश कर दिया गया। यह औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 एफ० एफ० एवं 25 एफ०एफ०ए० का खुला उल्लंघन है। यह कार्य उस समय किया गया जबकि कारखाने का उत्पादन बढ़ रहा था।

लगभग यही तस्वीर एवरेडी फैक्टरी के श्रमिकों की है। 1992 से श्रमिकों के वेतन बृद्धि के विषय में प्रबन्धन व श्रमिकों के बीच समझौता होने के बावजूद वेतन बृद्धि नहीं की गयी। उत्पीड़न जारी है, श्रमिक संघर्ष भी जारी है लेकिन रोटी का प्राप्त टुकड़ा भी छीने जाने का भय श्रमिकों में व्याप्त है। श्रमिकों से बातचीत में यह तथ्य सामने आया कि इस कमरतोड़ मंहगाई के दौर में भी अधिकांश मजदूरों को 3.50 रुपये प्रति घंटे की दर से मूल वेतन मिलता है। यह पारिश्रमिक करीब 30 रु. प्रतिदिन पड़ता है। ये श्रमिक कारखाने के नियमित मजदूर हैं।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार एक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए कम से कम भोजन की इतनी मात्रा होनी चाहिए कि उसे प्रतिदिन 2500 से 3000 कैलोरी ऊर्जा मिल सके। मंहगाई के वर्तमान दौर में सिर्फ जिन्दा रहने लायक खाद्य सामग्री खरीदने के लिए प्रति व्यक्ति प्रति दिन 34.25 रुपये चाहिए।

स्पष्ट है कि एक मजदूर का पारिश्रमिक उसे स्वयं को स्वस्थ रखने के लिये भी काफी कम है तो भला यह कैसे संभव है कि उतनी ही मजदूरी में वह अपना व अपने परिवार का भरण पोषण करेगा। जीवित रहने के लिये 1515 कैलोरी चाहिए जब कि स्वस्थ रहने के लिये 985 कैलोरी और चाहिए। इसकी व्यवस्था श्रमिक कहां से करे। नतीजतन वह और उसके परिजन समय से पहले बीमारियों के कारण मौत के मुंह में चले जाते हैं या फिर स्वयं वह व्यक्ति आत्महत्या शराबखोरी, जुआखोरी के शरण में चला जाता है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि एवरेडी व ऐसे ही अन्य कारखानों में नियमित श्रमिकों को भी साप्ताहिक अवकाश के दिन की मजदूरी नहीं दी जाती। इस संदर्भ में कानूनी प्राविधान की धारा 51 (कारखाना अधिनियम 1948) कहती है कि किसी वयस्क श्रमिक को एक सप्ताह में 48 घंटों से अधिक काम में नहीं लगाया जाना चाहिए। प्रावधान की धारा 52 यह कहती है कि किसी वयस्क श्रमिक के लिए सप्ताह का शुरुआती दिन (प्रबंधन द्वारा जो भी दिन तय किया गया हो) अवकाश का दिन होगा तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (केन्द्रीय नियम) 1950, अध्याय 4 के नियम 23 व 24 इस बात की व्यवस्था करते हैं कि पहले तो 48 घंटों का एक सप्ताह होगा और एक सप्ताह में एक दिन अवकाश का होगा, और इस अवकाश के दिन की उतनी ही मजदूरी प्रबंधन को देनी होगी जितनी मजदूरी श्रमिक अपने नियमित दिनों के पारिश्रमिक के रूप में पाता है। 8 घंटे कार्य के दौरान 30 मिनट का भोजन आदि लेने का उसे अन्तराल दिया जायेगा तथा यदि उस प्रतिष्ठान में 100 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तो कैन्टीन की व्यवस्था प्रबन्धन को करनी होगी। उल्लेखनीय है कि लखनऊ के ज्यादातर कारखानों में कैण्टीन की व्यवस्था नहीं है।

अध्याय 5, धारा 42,43,44,45, व 46 के प्राविधान प्रबंधन को निम्नलिखित श्रमिक कल्याण के कार्यों को करने को बाध्य करते हैं, जैसे - महिला और पुरुष श्रमिकों को वाशिंग सुविधायें देना। दोनों प्रकार के श्रमिकों को कपड़े देना, उन्हें रखने, धोने-सुखाने की विधिवत व्यवस्था करना, कारखाने की हद के भीतर प्राथमिक उपचार उपकरणों तथा रोगी होने की स्थिति में एक एम्बुलेन्स की व्यवस्था करना आदि।

इस देश का संविधान एक ओर यह कहता है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम राज्य सरकार पर एक संवैधानिक कर्तव्य नही डालता कि वह निर्वाह सूचकांक के अनुसार दृढता से न्यूनतम मजदूरी की दरें निर्धारित या संशोधित करे, दूसरी ओर न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की शक्ति संविधान की धारा 19 (1) बी और 19 (1) जी को भंग भी नहीं करती है। अर्थात जब राज्य सरकारें न्यूनतम मजदूरी की दरों को निर्वाह व्यय सूचकांक के अनुसार लागू नहीं करती तो श्रमिकों को यह अधिकार है कि वे शान्तिपूर्वक जुटकर अपनी बात रख सकते है। पूंजीपति, संविधान की धारा 19 (1) जी को पूंजीवादी हथौड़े से तोड़ कर मजदूरों को सड़कों पर छोड़ देते हैं।

संविधान की धारा 14 समानता का मौलिक अधिकार देती है। लेकिन देश की सर्वोच्च न्यायपालिका सुप्रीम कोर्ट द्वारा ये भी प्रतिस्थापित किया गया है कि यदि न्यूनतम मजदूरी की दरों का या न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्य प्रावधानों का असमानता के आधार पर कारखाना मालिकान (चाहे सरकारी संस्थान क्यों न हो) उल्लघंन करते हैं तो ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 14 "समानता के अधिकार" का उल्लंघन नहीं होता।

ऊपर की चर्चा से दो बातें सामने आती है। एक तो यह कि श्रम कानून के नाम पर जो कुछ भी इस पूंजीवादी जनतंत्र में भारत के श्रमिकों को मिला हे उसका मालिक खुलकर उल्लंघन करते हैं। कहने के लिए तो एक पूरा विभाग है श्रम कानूनों को लागू करवाने के लिए लेकिन भ्रष्टाचार और घूसखोरी इस कदर हावी है कि ये भी मालिकों के अपराधों के भागीदार बन जाते हैं।

दूसरे, श्रमिकों को अपने बुनियादी हकों के लिए संविधान कुछ भी नही देता। बुनियादी अधिकारों को इस कदर सीमित कर दिया गया है कि उसका फायदा श्रमिक वर्ग को न मिल सके। यहां तक कि न्यूनतम वेतन के बारे में भी संविधान पूरी तरह पूंजीपति वर्ग के हित में खड़ा है। एक बुर्जुआ संविधान से श्रमिक वर्ग को इससे अधिक अपेक्षा भी नही करनी चाहिए।

बिगुल टीम के अनुभव बताते हैं कि ज्यादातर मजदूरों को अपने ही भाइयों द्वारा लड़कर हासिल किये गये अधिकारों और कानूनी प्रावधानों के बारे में बहुत ही कम जानकारी है। मालिकान, अफसर और दलाल नेता इसका भरपूर फायदा उठाते हैं। मजदूरों को अपने सभी कानूनी अधिकारों की पूरी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए और उनकी हिफाजत के लिए लड़ना चाहिए। आज के दौर में यह और भी जरूरी है। साथ ही उन्हें इस बात का भी अहसास होना चाहिए कि मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर कभी भी उन्हें उनके पूरे जायज अधिकार नहीं मिल सकते। आने वाले दिनों में यह संकटग्रस्त व्यवस्था हमारे अधिकारों पर और भी ज्यादा हमले करेगी। हमारे पास बस एक ही चारा है। रोजमर्रा की लड़ाइयों में भरपूर शिरकत करते हुए कानून बनाने और लागू कराने के पूरे ढांचे को ही बदल डालने के संघर्ष के बारे में सोचें।

● डी.सी. वर्मा

सभी चुनावी मदानियों को धता बताओ ! इंकलाबी राजनीति का परचम उठाओ !!

दस्तावेज

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा

(1921 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत ''कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन पर प्रस्ताव'')

•

व्ला०इ०लेनिन

पेरिस कम्यून से लेकर अबतक के वर्ग-संघर्षों के इतिहास की सबसे बुनियादी शिक्षाओं में से एक यह है कि अपनी एक सच्ची क्रांतिकारी पार्टी - एक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के बिना सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध अपनी लड़ाई को फैसलाकुन जीत की मंजिल तक कदापि नहीं पहुंचा सकता और समाजवाद की स्थापना कदापि नहीं कर सकता।

लेनिन ने पहली बार, समग्र रूप में एक क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी के निर्माण एवं गठन तथा स्वरूप एवं प्रकृति से संबंधित सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मेंशेविकों और काउत्स्की से लेकर ख्रुश्चेव तक और आज के सी०पी०आई०, सी०पी०एम० तथा सी०पी०आई०(एम०-एल०) (लिबरेशन) जैसे संशोधनवादियों तक - सभी नकली कम्युनिस्ट जो क्रांति के लक्ष्य के साथ विश्वासघात करके महज पूंजीवादी चुनावी राजनीति और अर्थवाद के दलदल में धंस गये, कम्युनिस्ट पार्टी के सांगठनिक सिद्धान्तों को तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं या भुला देते हैं। क्रांति से विमुख हो चुके लोगों को भला एक क्रांतिकारी पार्टी की क्या जरूरत? उन्हें लेनिन, स्तालिन और माओ की पार्टियों जैसी पार्टी की नहीं, चवन्निया मेंबरी वाली, महज खुली चुनावी पार्टियों की जरूरत होती है। उन्हें मजदूरों की आर्थिक मांगों और राजनीतिक अधिकारों की मांगों के लिए नहीं बल्कि महज ट्रेडयूनियनवाद के लिए ट्रेडयूनियनों की दुकानों की ज़रूरत होती है।

चिन्ता की बात यह है कि देश के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाले बहुतेरे क्रांतिकारी कम्युनिस्ट ग्रुप भी आज सांगठनिक सिद्धान्तों और व्यवहार के मामले में बेहद ढिलाई बरत रहे हैं। बोल्शेविक सांगठनिक ढांचा खड़ा करने के बारे में वे गंभीर नहीं दीखते और ढीला-ढाला सामाजिक जनवादी आचरण कर रहे हैं।

एक सही-सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी के पुनर्गठन के लिए सांगठनिक उसूलों पर अडिग रहना बुनियादी विचारधारात्मक महत्व का मुद्दा है। एक सही क्रांतिकारी सांगठनिक ढांचे के बगैर कोई पार्टी सही कार्यक्रम होने पर भी क्रांति को आगे नहीं बढ़ा सकती। आज ज़रूरत है कि वर्ग-सचेत सर्वहारा वर्ग को और कम्युनिस्ट कतारों को बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों से एक बार फिर परिचित कराया जाये।

इस उद्देश्य से हम 'बिगुल' के इस अंक से विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के एक बहुमूल्य दस्तावेज का किश्तों में प्रकाशन शुरू कर रहे है।। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस द्वारा पारित इस दस्तावेज का मसविदा स्वयं लेनिन ने तैयार किया था। इन आम सिद्धान्तों की लोकप्रिय व्याख्या बाद में स्तालिन ने भी अपनी पुस्तक 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' में की।

- सम्पादक

सामान्य सिद्धान्त

सर्वहारा का अगुआ दस्ता

1- पार्टी के संगठन को परिस्थितियों और उसके कार्य के उद्देश्य के अनूकूल ढालना चाहिए। क्रांतिकारी वर्ग संघर्ष के सभी दौर में तथा समाजवाद की स्थापना यानी साम्यवादी समाज की पहली मंजिल की ओर अग्रसर होते हुए उसके बाद के संक्रमण काल में कम्युनिस्ट पार्टी को अगुआ दस्ते का, सर्वहारा वर्ग की अग्रिम चौकी का काम करना चाहिए।

2- कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन का कोई पूरी तरह से अचूक और कभी न बदला जा सकने वाला स्वरूप नहीं होता। सर्वहारा के वर्ग संघर्ष की परिस्थितियां विकास की निरन्तर प्रक्रिया के क्रम में परिवर्तनशील होती हैं तथा सर्वहारा के अगुआप दस्ते के संगठन को इन परिवर्तनों के अनुरूप स्वरूपों की खोज भी निरन्तर जारी रखनी चाहिए। इसी तरह से सम्बन्धित पार्टी के संगठन के विशेष बदले हुए स्वरूप का निर्धारण भी प्रत्येक अलग-अलग देश की विशेष परिस्थितियां करेंगी!

किन्तु संगठन के इस प्रकार के विभेदीकरण की निश्चित सीमाएं होती हैं। इन सारी विशेषताओं के बावजूद, विभिन्न देशों में और सर्वहारा क्रांति की विभिन्न मंजिलों में परिस्थितियों की समानता का अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए बुनियादी महत्व है। इससे सभी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन के लिए समान आधार तैयार होता है।

इस आधार पर यह आवश्यक है कि कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन को विकसित किया जाय। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि मौजूदा पार्टियों की जगह पर नयी आदर्श पार्टियों स्थापित की जाये तथा संगठन के किसी पूरी तरह से सही स्वरूप और आदर्श विधान बनाने का उद्देश्य सामने रखा जाय।

क्रांति का माध्यम

3- अधिकांश कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए, तथा विश्व भर के क्रांतिकारी सर्वहारा के संयुक्त दल के रूप में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के लिए उनके संघर्ष की हालतों में यह समान लक्षण होता है कि उन्हे अभी भी हावी पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध लड़ना है। इन सबके लिए जब तक स्थिति आगे न बढ़ जाय, निर्णायक और निर्देशक लक्ष्य है पूंजीपति वर्ग को हराना तथा उसके हाथ से सत्ता को छीन लेना। इस लिए, पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन सम्बन्धी कार्यों का निर्णायक तत्व ऐसे संगठनों को खड़ा करना होना चाहिए जो सत्तारूढ़ वर्गों के ऊपर सर्वहारा क्रांति की विजय को सम्भव तथा सुनिश्चित बना देंगे।

नेतृत्व का संगठन

4- किसी भी कार्य के लिए नेतृत्व एक आवश्यक शर्त होती है। किन्तु विश्व के इतिहास के सबसे बड़े संघर्ष के लिए तो वह सबसे अधिक अनिवार्य है। कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन सर्वहारा क्रांति में कम्युनिस्ट नेतृत्व का संगठन है।

अच्छा नेता बनने के लिए स्वयं पार्टी के पास अच्छा नेतृत्व होना चाहिए। इसलिए हमारे संगठनात्मक कार्य का मूल उद्देश्य होना चाहिए - सर्वहारावर्ग के क्रांतिकारी आन्दोलन में नेतृत्वकारी स्थान ग्रहण करने के लिए सुयोग्य नेतृत्वकारी कमेटियों के अन्तर्गत कम्युनिस्ट पार्टियों को संगठित और प्रशिक्षित करना।

5- अधिक से अधिक सम्भावित प्रहार शक्ति तथा संघर्ष की सदा बदलती हुए हालात में कम्युनिस्ट पार्टी और उसकी नेतृत्वकारी कमेटियों में अपने को इन हालात के अनुकूल ढालने की क्षमता - इन दोनों का जीवित योगदान ही क्रांतिकारी वर्ग संघर्ष में नेतृत्व का मतलब है। इसके अलावा सफल नेतृत्व के लिए सर्वहारा जनता के साथ निकटतम सम्बन्ध नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार के सम्बन्ध के बगैर नेतृत्व जनता की अगुआई नहीं करेगा-ज्यादा से ज्यादा वह जनता के पीछे-पीछे चल सकता है।

कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन के अन्दर सजीव एकता जनवादी केन्द्रीयता के द्वारा हासिल की जानी चाहिए।

कम्युनिस्ट पार्टी, सरकारी सत्ता और वर्ग संघर्ष

रूस में प्रारम्भिक दौर में मार्क्सवाद को स्थापित करने वाले ज्योर्जी प्लेखानोव द्वारा पेरिस से निकलने वाले अखबार 'ला पेती रिपब्लीक' की एक अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नमाला के जवाब में लिखा गया पत्र हम यहां छाप रहे हैं। इस प्रश्नमाला में जो प्रश्न उठाये गये हैं उनको आज एक लुटेरी सरकार में तथाकथित कम्युनिस्टों के शामिल होने के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। और इन प्रश्नों के प्लेखानोव द्वारा दिये गये उत्तरों की कसौटी पर इन ''कम्युनिस्टों'' के व्यवहार को परखा जा सकता है। प्लेखानोव साफ कहते हैं, ''बुर्जुआ सरकार में शामिल होने का कोई भी निर्णय समाजवादियों द्वारा केवल तभी लिया जा सकता है जब उनके सामने एक फौरी और सुस्पष्ट उद्देश्य हो - यानी वर्तमान समाज के विघटन को त्वरान्वित करने का उद्देश्य हो।'' लाल बत्ती वाली गाड़ियों में बैठे 'कामरेड' इन्द्रजीत गुप्त एण्ड कम्पनी क्या इस समाज का विघटन कर रही है या ''विघटनकारी तत्वों'' के शमन के नाम पर व्यवस्था के दमनतंत्र को मजबूत कर रही है?

यहां 'समाजवादी पार्टी' से अभिप्राय कम्युनिस्टों से है। - सम्पादक

प्रिय नागरिको,

आपने निम्नलिखित प्रश्नों पर मेरी राय जानने की इच्छा प्रकट करके मुझे सम्मानित किया है :

1. क्या एक समाजवादी पार्टी, वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त के साथ विश्वासघात किये बगैर, विभिन्न बुर्जुआ ग्रुपों के बीच के टकरावों में हस्तक्षेप कर सकती है, चाहे इसका उद्देश्य राजनीतिक स्वतंत्रता को बचाना हो या, मानवता की रक्षा करना हो, जैसाकि ड्रेइफस के मुकदमे★ में किया गया था?

2. समाजवादी सर्वहारा वर्ग एक बुर्जुआ सरकार में किस सीमा तक भाग ले सकता है; क्या एक समाजवादी पार्टी द्वारा सरकारी सत्ता का आंशिक लाभ लेना, निरपेक्षतः और सभी मामलों में, वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के खिलाफ पड़ता है?

मैं अपेक्षाकृत अधिक उत्सुकता के साथ जवाब दूंगा क्योंकि ये सवाल, जिनको आपने बहुत ही सही ढंग से इंगित किया है, अन्तरराष्ट्रीय दिलचस्पी के विषय हैं। वे इतने महत्व के हैं कि हमारी पार्टी का पूरा भविष्य ही इस पर निर्भर करता है कि किस ढंग से समाजवादी इन सवालों को एक या दूसरे अर्थ में निपटाते है।

मैं इस मामले में जो सोचता हूं वह यह है।

जैसाकि मैं इसे समझता हूं, समाजवादी सर्वहारा वर्ग को न सिर्फ इसका हक है बल्कि यह उसका कर्तव्य भी है कि जब कभी उसे क्रान्तिकारी आन्दोलन के हित में उपयोगी लगे, वह विभिन्न बुर्जुआ ग्रुपों के बीच के टकरावों में हस्तक्षेप करे। लेकिन वह हस्तक्षेप केवल उन्हीं मामलों में क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए उपयोगी हो सकता है और यह हस्तक्षेप केवल उन्ही मामलों में होना चाहिए जब यह एक तरफ, बुर्जुआ वर्ग, अर्थात, उत्पादन के साधनों के स्वामियों और दूसरी तरफ, सर्वहारा वर्ग अर्थात उन साधनों के स्वामियों द्वारा शोषित वर्ग के बीच के संघर्ष को महत्तर सक्रियता और दृढ़ता प्रदान करने में सक्षम हो।

बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष पहले हमेशा से अधिक सक्रिय और दृढ़ हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि सर्वहारा वर्ग में यह चेतना ज्यादा से ज्यादा भरती जाये कि उसके हित उसके शोषकों के हितों के बिलकुल खिलाफ है।

सर्वहारा वर्ग को क्रान्तिकारी चेतना समाजवादियों का वह जबर्दस्त डायनामाइट है जो वर्तमान समाज को विस्फोटित कर देगा। उस चेतना को उन्नत करने वाली हर चीज एक क्रान्तिकारी साधन समझी जानी चाहिए, और इसीलिए वह समाजवादियों को स्वीकार्य है। प्रत्येक चीज जो उस चेतना को कुंद करे, प्रतिक्रान्तिकारी है, और इसीलिए हमें उसकी भर्त्सना करनी चाहिए तथा उसे खारिज कर देना चाहिए। यही वह मुख्य सिद्धान्त है जिस पर हमारे सभी रणकौशल (टैक्टिक्स) आधारित होने चाहिए।

इस दृष्टिकोण पर अडिग रहकर मैं इस सोच का कायल हूं कि एक बुर्जुआ सरकार में समाजवादियों की भागीदारी हमें लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुंचायेगी, क्योंकि यह सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी चेतना को क्षीण करने की ही दिशा में ले जायेगी। लेकिन, मैं जानता हूं कि किसी भी नियम के अपवाद होते हैं और कि कोई भी सिद्धान्त यदि निरपेक्ष शब्दों में समझा जाये, तो वह आधिभौतिक बन जाता है। इसीलिए मैं इस सम्भावना को मान लेता हूं कि किसी एक दो या अपवादस्वरूप मामलों में कोई समाजवादी पार्टी एक बुर्जुआ मंत्रालय में अपने किसी एक प्रतिनिधि को भेजने पर सहमत होने के लिए बाध्य हो जाये, लेकिन ऐसे मामलों में निर्णय का अधिकार हमेशा उस पार्टी का ही होता है, किसी सदस्य विशेष का नहीं।

इसमें यह भी जोड़ा जाना चाहिए और इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि एक ***बुर्जुआ सरकार में शामिल होने का कोई भी निर्णय समाजवादियों द्वारा केवल तभी लिया जा सकता है जब उनके सामने एक फौरी और सुस्पष्ट उद्देश्य हो - यानी वर्तमान समाज के विघटन को त्वरान्वित करने का उद्देश्य हो।***

प्रिय कामरेडों, मेरे मित्रवत सम्मान को स्वीकार करें।

- जी. प्लेखानोव

जेनेवा, सितम्बर 1899

★ ड्रेइफस का मुकदमा - एक यहूदी फ्रांसीसी जनरल स्टाफ अफसर पर चला एक उत्तेजनापूर्ण मुकदमा, जिसमें उस पर जासूसी और उच्चस्तरीय गद्दारी करने का झूठा आरोप लगाकर प्रतिक्रियावादी राजतंत्रवादियों द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गयी थी। ड्रेइफस के मुकदमे को फ्रांसीसी प्रतिक्रियावादी हलकों द्वारा यहूदी विरोध भड़काने तथा गणतंत्रात्मक शासन और जनवादी स्वतंत्रताओं पर हमला करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। जब 1898 में समाजवादियों और प्रगतिशील बुर्जुआ जनवादियों (जैसे एमिल जोला, ज्यां जौ और अन्तोल फ्रांस) ने ड्रेइफस के मुकदमे की पुनः जांच के लिए अभियान शुरू किया, तो इस मुकदमे ने पूरी तरह राजनीतिक चरित्र अख्तियार कर लिया। देश दो खेमों में बंट गया, एक तरफ गणतंत्रवादी और जनवादी थे, तथा दूसरी तरफ राजतंत्रवादियों, पुरोहितों, यहूदी विरोधियों और अंधराष्ट्रवादियों का खेमा था। लोकमत के दबाव में, 1899 में ड्रेइफस को माफ कर दिया गया और रिहा कर दिया गया, और 1906 में उसे मन्सूखी अदालत द्वारा आरोप मुक्त करने के बाद सेना में पुनः ले लिया गया।

मौत का दरवाजा बन गई है मध्य प्रदेश की कपड़ा मिलें

मुकुल शर्मा

आर्थिक और शारीरिक विपन्नता की भयंकर स्थितियों में मध्यप्रदेश के ग्वालियर के कपड़ा मजदूर लगातार आत्महत्या कर रहे हैं या कई बीमारियों से मर रहे हैं। ये सभी मजदूर ग्वालियर के प्रसिद्ध जियाजी राव कॉटन मिल्स (जे.सी. मिल्स) के हैं, जहां अप्रैल 1992 से काम बंद है। तब से ही मिल के 8500 मजदूरों का वेतन भुगतान भी बंद है। यह वही शानदार 'ग्वालियर शूटिंग एंड शर्टिंग' है जहां के मजदूरों की दर्दनाक मौतें जारी हैं।

मध्यप्रदेश में जे.सी. मिल्स नई कपड़ा नीति और आर्थिक नीतियों के दौर में बंद होने वाली अकेली कपड़ा मिल नहीं है। इंदौर की हुकुमचंद मिल और उज्जैन की विनोद मिल 1991 से बंद है। उनके क्रमशः 5500 मजदूर और 5000 मजदूर सड़कों पर हैं। टोप मिल, इंदौर और नियाड टेक्सटाइल्स मिल, खांडवा के भी बन्द होने की आशंका है।

नई आर्थिक नीतियों से प्रभावित होने वाले मजदूरों की सहायता के लिए केंद्र सरकार का बहुप्रचारित राष्ट्रीय नवीनीकरण कोष (एन आर एफ) है। बंद और बीमार होने वाले कपड़ा मिलों के मजदूरों के लिए केंद्र सरकार द्वारा सितंबर 1986 में स्थापित कपड़ा मजदूर पुनर्वास कोष है। पर ग्वालियर के इन मजदूरों के लिए कोई कोष काम नहीं आ रहा है।

राज्य के श्रम विभाग के आधिकारिक प्रवक्ता के अनुसार, मध्यप्रदेश की विभिन्न सरकारों ने पिछले सात सालों में बीमार और बंद कपड़ा मिलों पर चार कमेटियां बनाई हैं - 1988 में गंगाराम तिवारी कमिटी, फिर कन्हैया लाल यादव कमिटी और भरतसिंह कमिटी, वर्तमान राज्य सरकार ने वित्त मंत्री की अध्यक्षता में एक कैबिनेट कमिटी बनाई जिसने अगस्त 1994 में अपनी सिफारिशें दीं। इन सभी कमिटियों की रिपोर्टें न केवल गोपनीय हैं, बल्कि किसी पर भी कार्रवाई नहीं हुई है।

नई कपड़ा नीति 1985, नई आर्थिक नीतियां, मिल मालिकों का उद्योग और श्रम कानूनों का बेजा इस्तेमाल, रोजगार की चिंता न करने वाला औद्योगिकरण और आधुनिकीकरण, मजदूरों और उनके आंदोलनों की टूटन - इन सबके सम्मिलित प्रभाव से देश के एक प्रतिष्ठित और अभी भी नये प्रकार से लगातार विकसित हो रहे औद्योगिक शहर का एक बड़ा पेशेवर समूह समाप्त हो रहा है। उनकी जीवन स्थितियां बेहद बुरी हैं। वे गरीबी रेखा के इतने नीचे पहुंच गये हैं कि उनका शारीरिक अस्तित्व कभी भी समाप्त हो सकता है। उनकी खुराक इतनी कम और असंतुलित है कि वे कई प्रकार की बीमारियों से घिरे हुए हैं। उनकी बीमारी कभी भी जानलेवा बन सकती है।

नई कपड़ा नीति के वक्तव्य के अनुसार, "इसके परिणामस्वरूप इकाइयों को अपनी क्षमता ठीके पर देने, कोई इकाई बंद करने की अनुमति दी जायेगी।" इस नीति के लागू होने के बाद कई मिलों के विविंग सेक्शनों की कटौती और आधुनिकीकरण, कानूनी-गैरकानूनी पावरलूमों में बेतहाशा वृद्धि, सूत की कीमतों में भारी वृद्धि, जैसे कई परिणाम सामने आये। इसी पृष्ठभूमि में पहले जे.सी. मिल्स प्रबंधकों ने कारखाने का कॉटन सेक्शन बंद करने के लिए राज्य सरकार से अनुमति मांगी। जब यह नहीं मिली, तब प्रबंधकों ने बिजली नहीं मिलने (वास्तव में बिजली बिल का भुगतान नहीं करने के कारण कनेक्शन कटने) के नाम पर काम बंद कर दिया। पर तकनीकी-कानूनी तौर पर कारखाना खुला हुआ है : पिछले तीन सालों से भी ज्यादा समय से यहां चालू कारखानों की तरह विभिन्न पालियों व छुट्टियों के नोटिस लगते हैं। बचे हुए मजदूर रोज कारखाना गेट पर जमा होते हैं। और अपनी हाजिरी लगाते हैं। पर वे अपनी मजदूरी और अन्य सुविधाएं-ई.एस.आई. आदि नहीं पाते हैं।

कपड़ा मजदूर गरीबी-तंगहाली के साथ-साथ निराशा-हताशा के अंधेरे में डूबे हैं, जहां उन्हें आत्महत्या के सिवाय कोई और रास्ता नहीं सूझता है। 40 वर्षीय फूल सिंह प्रजापति मिल की स्पिनिंग विभाग का एक कुशल मजदूर था। उसने 4 दिसम्बर 1994 को आत्महत्या कर ली। तीन बच्चों के पिता फूलसिंह ने बेरोजगारी के शुरूआती दिनों में घर का सारा सामान बेच दिया। जब घर में कुछ भी नहीं बचा, तब उसने रिक्शा चलाना शुरू किया। पर कुछ समय बाद उसे रिक्शा मिलना भी बंद हो गया। घर में भूख से बिलखते बच्चे छोड़कर उसने जहर खाकर अपना जीवन समाप्त कर लिया। मजदूर कालोनी में कोई नहीं जानता कि फूलसिंह के अनाथ बच्चों का क्या हुआ। 50 वर्षीय जॉबर रामदत्त संविता भी पिछले 30 सालों से इसी मिल का मजदूर था। वह कारखाना बंद होने के बाद विक्षिप्त सा हो गया। कहते हैं कि वह तीन दिन तक भूखा रहा और फिर एक दिन उसकी लाश बरामद हुई। रामदत्त का पड़ोसी था भगवानसिंह। भगवान भी एक बेरोजगार मजदूर था, पर हमेशा रामदत्त को हिम्मत बंधाता था। रामदत्त की मौत के बाद उसने भी आत्महत्या कर ली। 25 वर्षीय रामहेत मिल के खाता सेक्शन में काम करता था। कारखाना बंद होने के बाद से ही वह बेरोजगार था। पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी। उसके सीने में असह्य दर्द था। रामहेत ने अपने दोस्तों और पड़ोसियों से उधार मांगा, पर कोई भी उसकी सहायता करने की स्थिति में नहीं था। वह पत्नी की पीड़ा नहीं देख सका और उसने जहर खा लिया।

जे.सी. मिल्स बंदी के कानूनी अनुभवों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि देश में चाहे कोई अलग 'एक्जिट पॉलिसी' नहीं हो, पर मिलमालिकों के लिए मिल बंद करने के कई रास्ते खुले हुए हैं। 4 मई 1992 को ही श्रम न्यायालय ने बंदी और ले-आफ गैर-कानूनी घोषित कर दिया, पर यह अब तक उच्च और उच्चतम न्यायालय में फंसकर रह गया है। मार्च 1992 से लेकर जनवरी 1995 तक श्रम न्यायायल ने प्रबंधकों पर मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936 के तहत कोई 70 आपराधिक मामले दर्ज किये हैं, पर इसका कोई नतीजा नहीं निकला है।

नौवें दशक में ग्वालियर और इसके तीन प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों - (मालनपुर, घिरौंत्रि और बामोड़) में कई बड़ी कंपनियों - जे.के. इंडस्ट्रीज, कैडबरी, लार्सन एंड टूब्रो, क्रांपटन एंड ग्रीब्स, कोठारी प्रोडक्ट्स, गोदरेज, हॉट लाईन आदि का आगमन हुआ है। पर **इस नये औद्योगीकरण में बेरोजगार और भूख से मरते मजदूरों के लिए कोई जगह नहीं है।**

('देशकाल संवाद' से साभार)

कपड़ा मजदूर : आत्महत्याएं और असामान्य मौतें

सितंबर 1992-95

क्रम	नाम	उम्र	राज्य	विभाग	कारण
1.	राजाराम राय	45	मध्यप्रदेश	स्पिनिंग	आत्महत्या
2.	बनवारीसिंह सिकरवार	40	मध्यप्रदेश	लूमसेट	आत्महत्या
3.	मुन्नीदेवी सिकरवार	34	मध्यप्रदेश	बनवारी की पत्नी	आत्महत्या
4.	मटरेलाल	50	उत्तरप्रदेश	जॉबर	आत्महत्या
5.	भगवानसिंह तोमर	40	मध्यप्रदेश	स्पिनिंग	आत्महत्या
6.	रामसिया परिहार	30	मध्यप्रदेश	चौकीदार रामनरेश की पत्नी	आत्महत्या
7.	शरद कुमार शर्मा	45	हरियाणा	स्पिनिंग सिंथेटिक	आत्महत्या
8.	रामहेत	25	मध्यप्रदेश	बदली मजदूर	आत्महत्या
9.	फूलसिंह प्रजापति	40	मध्यप्रदेश	स्पिनिंग	आत्महत्या
10.	हरिलाल	49	बिहार	रनखाता	आत्महत्या
11.	महाराजसिंह	50	उत्तरप्रदेश	रनखाता	आत्महत्या
12	बाबूलाल	48	मध्यप्रदेश	बाइंडिंग	टी.बी.
13.	राधेश्यामबघेल	45	मध्यप्रदेश	स्पनिंग	टी.बी.
14.	रामसिंह	40	बिहार	बाइडिंग	कैंसर
15.	कल्याणसिंह	35	मध्यप्रदेश	स्पिनिंग	अज्ञात
16.	भगवानसिंह चौधरी	40	मध्यप्रदेश	बाइडिंग	अज्ञात
17.	बाबूलाल	48	मध्यप्रदेश	स्पिनिंग	बुखार
18.	सरनामसिंह तोमर	42	मध्यप्रदेश	जाबर	टी.बी.
19.	अजयपालसिंह सेंगर	50	उत्तरप्रदेश	स्पिनिंग	अज्ञात
20.	राजेन्द्र	40	मध्यप्रदेश	लूमसेट	अज्ञात
21.	मिथलेश	20	बिहार	मजदूर रोशनलाल की लड़की	बुखार
22.	प्रेमकुमार श्रीवास्तव	35	मध्यप्रदेश	लूम	अज्ञात

ये आत्महत्याओं और असामान्य मौतों के ऐसे मामले हैं जिनका पूरा विवरण मिल पाया है। आशंका है कि वास्तविक संख्या कहीं ज्यादा है। ग्वालियर के कपड़ा मजदूरों के संगठन वस्त्र उद्योग मजदूर एकता यूनियन (सम्बद्ध सीटू) के प्रवक्ता के अनुसार, इस अवधि में 37 कपड़ा मजदूरों ने आत्महत्या की है और 100 से ज्यादा की असामान्य अप्राकृतिक मौतें हुई हैं।

बेरोजगारी के दिन है

39 वर्षीय श्रीकृष्ण बघेरी जे.सी. मिल्स के वीविंग सेक्शन में 16 सालों से काम कर रहे थे। पहले उनके पिता भी इसी मिल में थे।

दो लड़के और तीन लड़कियों के पिता श्रीकृष्ण ग्वालियर के ही रहने वाले हैं। मिल बंद होने के बाद उन्होंने शहर में कई जगह काम ढूंढा। अंततः हारकर वे महाराष्ट्र के मालेगांव चले गये और वहां पावरलूम पर काम करने लगे।

श्रीकृष्ण बघेरी बताते हैं, "पावरलूम सेक्टर में काम के लंबे घंटे, मामूली मजदूरी, काम करने व रहने की बेहद बुरी स्थितियों के कारण मैं बीमार रहने लगा। फिर पावर कट के कारण काम भी घट गया और घर रुपये भेजने के लिए बहुत कम बचता था। ग्वालियर वापस आ गया हूं और पिछले चार महीने से काम खोज रहा हूं।"

रास्ते बंद दिखते हैं

48 वर्षीय कैलाश कुशवाहा उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के रहने वाले हैं। वे 1962 से जे.सी. मिल्स के स्टॉपिंग विभाग में काम कर रहे थे। गांव में उनका एक पुराना जर्जर घर है, पर कोई और जमीन-जायदाद नहीं है।

मिल बंद होने के बाद ग्वालियर रेलवे स्टेशन पर सीमेंट की बोरी की ढुलाई करते हैं। बीमार और थके दिखते कुशवाहा तन-मन से बिखरे हुए हैं। वह दुख और तनाव में कहते हैं, "मैंने अब जिंदगी के बारे में सोचना छोड़ दिया है। मेरे सोचने और करने के बस में कुछ नहीं रहा। मैं बीमार हूं, मेरे पिता बीमार हैं, फिर भी हम डाक्टर के पास नहीं जा सकते हैं। हमारे पास इलाज के लिए पैसे नहीं हैं। हम दोनों वक्त की रोटी नहीं जुटा सकते हैं, तो बच्चों के स्कूल का सवाल ही नहीं उठता है। मैंने दो बार जवाहर रोजगार योजना के तहत कर्जे के लिए आवेदन किया, पर कोई नतीजा नही निकला। उल्टे इस गरीबी में 100 रुपये फार्म भरने में निकल गये। हमारा कोई सहारा नहीं है। यही लगता है कि खुद को खत्म करने के अलावा अब कोई और रास्ता नहीं है.....।"

नारी सभा

बिहार में स्त्री-श्रमिकों की स्थिति

उनकी दुनिया का अंधेरा और अधिक गहरा है!

समाज के पुरुष-प्रधान ढांचे और औरत की कमज़ोर सामाजिक स्थिति का फायदा उठाकर पूंजीपति स्त्री-श्रमिकों का श्रम पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा बहुत कम दरों पर खरीदते हैं। अपेक्षाकृत अधिक शोषण के साथ ही उन्हे मालिकों द्वारा तरह-तरह उत्पीड़न और जोर-जबरदस्ती का भी शिकार होना पड़ता है।

यूं तो दुनिया के धनी पश्चिमी देशों में भी स्त्री-श्रमिकों की स्थिति पुरुष श्रमिकों से खराब है, पर पिछड़े देशों और गरीब देशों में तो वे गुलामों की तरह खटने के बाद भी नर्क का जीवन बिताने लायक सरंजाम ही जुटा पाती हैं। असंगठित क्षेत्र की मजदूरिनों की स्थिति सबसे बदतर है और पूरे देश में ज्यादातर स्त्रियां असंगठित क्षेत्र में ही काम करती हैं।

एक सर्वेक्षण के मुताबिक बिहार में 75 लाख से अधिक स्त्री श्रमिक है जिनमें से सिर्फ 5 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में और 95 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं। संगठित क्षेत्र में काम करने वाली औरतों के मुकाबले असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली स्त्रियों को अधिक अत्याचार और शोषण का शिकार होना पड़ता है। यहां तक कि कुछ जगहों पर तो वे आज भी बंधुआ मज़दूरों की तरह काम करती हैं।

सर्वेक्षण के मुताबिक खदान, बीड़ी उद्योग, ईंट भट्टा, भवन निर्माण, कृषि एवं सिचाई, खाद्य सामग्री निर्माण, हथकरघा, कुटीर उद्योग, घरेलू उद्योग, निजी औषधालय और निजी शिक्षण संस्थाएं वे असंगठित क्षेत्र हैं जहां औरत मजदूरों का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। ये सभी औरतें घर का सारा काम निबटाने के बाद मेहनत-मजूरी करती हैं। बच्चों का पालन-पोषण भी इन्हीं की ज़िम्मेदारी होती है। घर में इन्हें अक्सर शराबी पतियों के हाथों पिटना पड़ता है और काम के दौरान भी मालिकों द्वारा जोर-जबर्दस्ती और यौन-शोषण आम बात होती है।

बिहार राज्य के बीड़ी उद्योग में तकरीबन 20 लाख औरतें काम करती हैं। इन्हें प्रति हज़ार बीड़ी की दर से मज़दूरी मिलती है जो 8 से 10 रुपये मात्र होती है, जबकि 1990 के न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम के हिसाब से कम से कम 21 रुपये प्रति हजार मिलनी चाहिए। बांध, सड़क-निर्माण और खेती के कामों में तो इन्हें बस कुछ रुपये और थोड़े से अनाज से ही संतोष कर लेना पड़ता है। सबसे बुरी हालत तो गर्भवती कामकाजी औरतों की है। इन्हें सामान्य दवा-इलाज की सुविधा भी नसीब नहीं। कार्यक्षेत्र में स्त्री श्रमिकों को शौचादि की निरापद व्यवस्था का घोर अभाव है। बाल बच्चेदार औरतों को काम के दौरान अपने बच्चों की सुरक्षा की चिंता-त्रासदी से भी गुजरना पड़ता है। कई औरतें अपने बच्चों को लेकर काम पर जाती हैं, और आसपास कहीं खुले आसमान के नीचे छोड़कर पत्थर तोड़ने, मिट्टी ढोने, बुवाई-कटाई करने जैसे काम करती हैं। काम के दौरान यदि बच्चों के रोने पर भी वे ध्यान देती हैं तो उन्हें मालिकों से डांट और भद्दी गालियां सुननी पड़ती हैं और काम से हटा देने की धमकी भी दी जाती है।

अधिकांश असंगठित क्षेत्र में या तो यूनियनें है ही नहीं या हैं भी तो कुछ राजनीतिक दलालों की जेबी यूनियनें हैं जो गुण्डों के द्वारा जबरिया चन्दा व मेंबरी वसूलने का काम करते हैं। इन नाम मात्र की यूनियनों में भी स्त्री श्रमिकों की भागीदारी न के बराबर ही होती है।

असंगठित क्षेत्र की इन स्त्री-श्रमिकों को एकजुट करना और उन्हें राजनीतिक चेतना देकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना कठिन ज़रूर है, पर मज़दूर आंदोलन की मजबूती व क्रांतिकारीकरण के लिए यह बेहद ज़रूरी है।

क्रांतिकारी मज़दूर संगठनकर्ताओं के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि वे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए मज़दूर औरतों के बीच जायें, उन्हें राजनीतिक तौर पर जागरूक बनाये, उनके अधिकारों के प्रति उन्हें सजग बनाकर ट्रेड यूनियनों में सक्रिय भागीदारी के लिए तथा अपने राजनीतिक अधिकारों को लेकर संघर्ष के लिए तैयार करें। यदि कुछ स्त्रियां, खासकर मज़दूर स्त्रियां ही संगठनकर्ता के रूप में काम करें तो यह काम अधिक प्रभावी ढंग से हो सकेगा। पुरुष मज़दूरों की स्त्रियों को दबाने वाली पुरुष-दंभ की मानसिकता को समझा-बुझाकर, तरह-तरह से सांस्कृतिक-राजनीतिक प्रचार करके दूर करना होगा और उन्हें बताना होगा कि आधी आबादी को बराबरी का दर्जा साथ लिए बिना न तो वे अपने मज़दूरी और हक़ो की रोज़मर्रे की लड़ाई ही लड़ सकते हैं, न ही नई मज़दूर क्रांति और समाजवाद के पुनर्जन्म का सपना साकार करने की दिशा में ही एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। ●

प्रेरणा के स्रोत

'मौका मिले तो फिर से क्रान्तिकारी परचम उठाना चाहेंगे!'

- सुरेन्द्र कुमार (1946 के नाविक विद्रोह के भागीदार क्रान्तिकारी)

[70 वर्षीय सुरेन्द्र कुमार ने अपनी युवावस्था में 1942 के आंदोलन में हिस्सा लिया था और गिरफ्तार हुए थे। 1943 में वे रायल इण्डियन नेवी (अंग्रेजी औपनिवेशिक हुकूमत की जलसेना) में भर्ती हुए और फरवरी 1946 के नाविक विद्रोह के भागीदार बने तथा इसकी सजा भुगती। सुरेन्द्र कुमार जी इनदिनों दिल्ली में एकांत जीवन बिता रहे हैं। अतीत के गौरवशाली संघर्षों की यादों में जीते हुए वर्तमान के कठिन अंधेरे के भी गवाह हो रहे हैं। कम्युनिस्ट आंदोलन की मुख्य धारा के संशोधनवादी हो जाने और क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट धारा की विचारधारात्मक कमजोरियों–भटकावों–बिखरावों के बावजूद उनकी उम्मीदें अभी मरी नहीं हैं। प्रस्तुत है उनका एक संस्मरण, उन्हीं के शब्दों में। – सम्पादक]

शायद आठवें दशक के अंत की बात है, मैं हैदराबाद नगर में अमर शहीद भगतसिंह के एक निकटतम सहयोगी (अब स्वर्गीय) विजय कुमार सिन्हा के घर पर देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर मेजबान से बातचीत कर रहा था। विजय बाबू कुछ उद्विग्न थे। उनके पुत्र (जिनका कुछ समय बाद देहांत हो गया था) तथा पुत्रवधु नगर के किसी कालेज में पढ़ाने के साथ-साथ नक्सलवादियों के साथ काम कर रहे थे।

अनायास मैंने विजय बाबू से पूछा - ''अगर आपको नये सिरे से अपनी जीवन यात्रा आरंभ करने का सुयोग मिल जाये, तो क्या आप फिर से पिस्तौल या क्रान्तिकारी परचम हाथ में नहीं उठाना चाहेंगे?''

कुछ क्षण मौन रहने के उपरान्त वह बोलेः ''शायद... हां....। और तुम?

''मैं भी शायद वैसे ही विद्रोह की पुनरावृत्ति में अपना योग देता, जैसा 1946 में तत्कालीन रॉयल इंडियन नेवी में हुआ था।'' मेरा उत्तर था।

सार्वजनिक उद्योग : श्रमशक्ति के सार्वजनिक लूट का जरिया

(पेज 1 से आगे)

के सारे श्रमिक बेकार हो गये। बजाज कम्पनी का खतरा टल गया और स्कूटर्स इंडिया के माडलों को बाजार में उतार कर वह मालामाल हो गयी। श्रमिकों के हितों को दरकिनार करते हुए सरकार ने भी पूंजीपतियों का ही पक्ष लिया।

स्कूटर्स इंडिया की दूसरी इकाई जहां विक्रम टैम्पो बनता है, वहां पर कोई समस्या नही थी लेकिन मुनाफे के एकतरफा हस्तान्तरण से वहां भी विकास अवरुद्ध हो रहा था। यहां पर तो कल-पुर्जे सीधे तिगुने दर पर निजी पूंजीपतियों से खरीदे जाते थे। 200 सी०सी० का इंजन, गेयर बाक्स, डायनास्टेटर आदि महत्वपूर्ण पुर्जों की खरीद के बहाने प्रति टेम्पो करीब दस हजार रुपये अतिरिक्त पूंजीपतियों के पास चले जाते हैं। टेम्पो की तत्काल डिलीवरी की व्यवस्था कागज पर समाप्त कर दी गयी। लेकिन इसके नाम परं ग्राहकों से दस हजार रुपये अतिरिक्त वसूली का काम अब भी चल रहा है, फर्क इतना है कि वह रकम कम्पनी को मिलने के बजाय डीलरों और अफसरों में बंट रही है। इसके अलावा विभिन्न किस्म के भ्रष्टाचार और चोरी के मार्फत बड़े अफसर जो रकम हड़प कर जाते हैं उसका यदि औसत निकाला जाये तो हर टेम्पो पर कम से कम दस हजार बैठेगा। जब एक टेम्पो में पैदा हुए मुनाफे का तीस हजार इस तरह चला जाएगा तो कम्पनी का दिवाला निकलेगा ही। अत्यधिक मुनाफा पैदा करने के बाद भी कंपनी घाटे में चलने लगी। मजदूर आंदोलन की गर्मी से दबकर फैक्ट्री तो नहीं बन्द की गयी, हां इसे बी०एफ०आई०आर० (औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड) के हवाले कर दिया गया जिसने कम्पनी को पुनर्जीवित करने के नाम पर कठोर शर्तें लगाई, जिसमें वेतन तथा अन्य सुविधाओं को पूरी तरह जाम करना, डेढ़ हजार कर्मियों को अतिरिक्त घोषित करना, टेक्नोलाजी में कोई सुधार न करना शामिल था। इसके साथ ही 1998 तक प्रति वर्ष 18,000 टैम्पो उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया, अर्थात पुरानी स्थितियों की लूट को जारी रखते हुए मजदूरों को गुलामों की तरह खटाना।

मैनेजमेंट ने बी०एफ०आई०आर० के बहाने तालाबन्दी का डर दिखाकर कम्पनी का भविष्य अन्धकार होने का माहौल बनाया और धोखा देकर 1993 में एक साथ 942 कर्मचारियों को नौकरी से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने पर विवश कर दिया। इनमें से स्टाफ व अफसर श्रेणी के करीब 100 लोगों को तथा मैनेजमेंट के मनमाफिक कुछ लोगों को बाद में काम पर वापस ले लिया गया पर बाकी मजदूर मामूली मुआवजा थमाकर बाहर कर दिये गये। इनमें से ज्यादातर मजदूर आज तबाही के कगार पर हैं। अनेक मजदूरों ने भयानक तंगी और मानसिक परेशानी के कारण आत्महत्या कर ली और अनेक पागलपन तक पहुंच चुके हैं।

धोखे से की गई इस छंटनी के बाद शेष मजदूरों ने हाड़तोड़ मेहनत शुरू की और 1996 में ही 18,000 टेम्पो उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया। कम्पनी का सालाना कारोबार पांच वर्ष में 19 करोड़ रुपये से 100 करोड़ रुपये पहुंच गया। लेकिन इसके लाभ में से मजदूरों के एक छदाम भी नहीं मिला और उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती जा रही थी। विद्रोह का स्वर मुखर होने लगा और जनवरी 1996 में संघर्ष शुरू हो गया। तुरन्त, संघर्ष को कुचलने के लिए 13 मजदूरों को निलम्बित कर दिया गया। इस पर भी जब आंदोलन नहीं थमा तो प्रबन्धकों को 550 रुपये प्रति माह अंतरिम राहत देना स्वीकार करना पड़ा। आन्दोलन थमने पर यह अंतरिम राहत भी तुरन्त बन्द की दी गयी।

इस बीच मजदूर बी.एफ.आई.आर. से फैक्ट्री को मुक्त करने की लड़ाई लड़ते रहे क्योंकि ऐसा हो जाने पर यह सच कानूनी मान्यता प्राप्त कर लेता कि फैक्ट्री लाभ में चल रही है, उसे किसी बैसाखी की जरूरत नहीं है। पिछले दिनों मजदूरों ने यह लड़ाई जीत ली क्योंकि बी०एफ०आई०आर० के सामने सच को स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था। छोड़ते-छोड़ते बी०एफ०आई०आर० ने कुछ ऐसी शर्तें थोप दी जिससे श्रमिकों के श्रम की लूट बदस्तूर जारी रहे और निजी पूंजीपति मालामाल होते रहें। पहली शर्त, साढ़े तीन सौ श्रमिकों की ओ-तीन साल में और छंटनी की जायेगी। दूसरे, कोई वेतनवृद्धि नहीं की जायेगी और तीसरे, टेक्नोलाजी में सुधार की कोई ठोस योजना नहीं अर्थात जरूरी पुर्जों को बाजार से खरीदने के बहाने मुनाफे का हस्तान्तरण जारी रहेगा। इन शर्तों का अर्थ आसानी से समझा जा सकता है।

बी.एफ.आई.आर. से मुक्ति के बाद 1991 से स्थगित वेतन वृद्धि की मांग को लेकर मजदूरों का संघर्ष और तेज हो गया है। इस समय संघर्ष निर्णायक दौर से गुजर रहा है।

यह कहानी किसी एक सार्वजनिक उद्योग पर लागू नहीं होती बल्कि सभी का सच है। इन उद्योगों की पीठ पर सवार होकर निजी पूंजीपति अब इतने ताकतवर हो चुके हैं कि बड़े-बड़े सार्वजनिक उद्योगों को निगलकर एकाधिकारी लाभ अर्जित करना चाहते हैं। रूस और चीन में समाजवाद की तात्कालिक हार और नकली कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा संघर्ष का झण्डा फेंक देने का फायदा उठाकर पूंजीवाद ने मजदूरों पर हमला बोल दिया है। सार्वजनिक उद्यमों को सीधे अपने अधीन कर खुले पूंजीवाद की स्थापना का दौर शुरू हो गया। सार्वजनिक उद्योग कल के पूंजीवाद की जरूरत थी। इनकी समाप्ति आज के पूंजीवाद की आवश्यकता है। कभी सार्वजनिक उद्यमों के पक्ष में पूंजीवाद के नेहरू जैसे नेताओं ने जो तर्क दिया था, उसके ठीक उल्टे तर्क देकर आज के पूंजीवादी नेता जनता को गुमराह कर रहे हैं। सार्वजनिक उद्यमों के तथाकथित घाटे की सच्चाई से हम ऊपर अवगत हो ही चुके हैं, लेकिन ये तो भरपूर मुनाफे में चलने वाले उद्यमों को भी हथियाने में लगे हैं। प्रतियोगिता के अभाव में विकास रुकने की बात भी गलत है, क्योंकि सार्वजनिक उद्योगों की खरीद बाजार पर एकाधिकार कायम करने के लिए की जा रही है जो प्रतियोगिता का पूर्ण निषेध है।

आज केवल लखनऊ में सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों की स्थिति पर नजर डालें तो यह बात साफ हो जाती है। यू. पी. ड्रग्स एण्ड फार्मास्युटिकल्स लि. को बेचने का फैसला हो चुका है, अप्ट्रान की बिक्री के लिए टेण्डर निकाला जा चुका है, यू.पी. इंस्ट्रूमेंट्स लि. मिट्टी के मोल बेची जा चुकी है। कभी दस हजार मजदूरों को रोजगार देने वाली विक्रम काटन मिल कई वर्ष से बन्द पड़ी है। इन सभी के मजदूर अपनी मांगों को लेकर संघर्षरत है। रेलवे वर्कशापों, एवरेडी फ्लैशलाइट फैक्ट्री आदि में भी मजदूर बढ़ते शोषण के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। लेकिन इन सभी संघर्षों को एकजुट करने की जरूरत है। साथ ही हमें यह समझ लेना चाहिए कि केवल एक कारखाने या शहर के स्तर पर लड़कर मजदूर हकों पर जारी हमलों की बाढ़ को रोका नहीं जा सकता।

मजदूरों के संघर्षों से हासिल कानूनी अधिकारों में अपने हितों के अनुरूप तोड़-मरोड़ करने के लिए भी पूंजीपति वर्ग संसद एवं व्यवस्था की पूरी मशीनरी का नंगा इस्तेमाल कर रहा है। पहले से कमजोर श्रम कानूनों को और बेजान बनाया जा रहा है। सभी चुनावबाज राजनीतिक पार्टियां इस कार्य में पूंजीवाद के साथ खड़ी हैं। पुराने प्राप्त अधिकारों को छीने जाने के खिलाफ चलने वाले मजदूर आन्दोलन की आज के युग में एक सीमा है। इतिहास पटल से राजकीय पूंजीवाद का युग समाप्त हो चुका है। अब सीधी लड़ाई पूंजीवाद के खिलाफ अर्थात उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने के खिलाफ है। वैश्विकीकरण के इस दौर ने सिर्फ दुनिया के लुटेरों को ही एक नहीं किया है बल्कि उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि इनकी कब्र खोदने वाले श्रमिक वर्ग की वास्तविक एकजुटता की परिस्थितियां भी कायम की हैं। इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए पूरे मजदूर आन्दोलन को सामाजिक बदलाव के लिए नये सिरे से पैदा हो रहे क्रांतिकारी आन्दोलन से एकाकार करना होगा। रोज-रोज के संघर्षों में शामिल होने के साथ यह लक्ष्य हमारी आंखों से ओझल नहीं होना चाहिए।

● ओमप्रकाश

गजानन माधव मुक्तिबोध
की पुण्यतिथि
(11 सितम्बर)
के अवसर पर
उनकी एक कविता

पूंजीवादी समाज के प्रति

इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अन्त:शुद्धि
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर-भक्ति,
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर जाल
केवल एक जलता सत्य देते टाल।
छोड़ो हाय, केवल घृणा औ' दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अन्ध
देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि है उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

कम्युनिज़्म

बर्तोल्त ब्रेख़्त

यह विवेकसम्मत है,
हर आदमी इसे समझता है
यह सीधा-सादा है
तुम शोषक नहीं हो - तुम इसे
जज़्ब कर सकते हो
यह तुम्हारे लिए फायदेमन्द है,
इसकी गवेषणा करो।
बेहूदे इसे बेहूदा कहते हैं
और गन्दे, गन्दा
यह गन्दगी के खिलाफ़ है
यह बेहूदगी के खिलाफ़ है।
शोषक इसे अपराध कहते हैं
मगर हम जानते हैं
यह अपराध का खात्मा है
यह अज्ञान नहीं, अज्ञान का अंत है,
विघटन नहीं, व्यवस्था है।
यह आसान चीज़ है
लेकिन इसे हासिल करना
बेहद मुश्किल है।

कुर्सीनामा

1.
जब तक वह जमीन पर था
कुर्सी बुरी थी
जा बैठा जब कुर्सी पर वह
जमीन बुरी हो गयीं।

2.
उसकी नजर कुर्सी पर लगी थी
कुर्सी लग गयी थी
उसकी नजर को
उसको नजरबन्द करती है कुर्सी
जो औरों को
नज़रबन्द करता है।

3.
महज ढांचा नही है
लोहे या काठ का
कद है कुर्सी
कुर्सी के मुताबिक वह
बड़ा है या छोटा है
स्वाधीन है या अधीन है
खुश है या गमगीन है
कुर्सी में जज्ब होता जाता है
एक अदद आदमी।

4.
फाइलें दबी रहती है
न्याय टाला जाता है
भूखों तक रोटी नही पहुंच पाती
न ही मरीजों तक दवा
जिसने कोई जुर्म नही किया
उसे फांसी दे दी जाती है
इस बीच
कुर्सी ज़ी है
जो घूस और प्रजातंत्र का
हिसाब रखती है।

5.
कुर्सी खतरे में है तो
प्रजातंत्र खतरे में है
कुर्सी खतरे में है तो
देश खतरे में है
कुर्सी खतरे में है
तो दुनिया खतरे में है
कुर्सी न बचे
तो भाड़ मे जाये प्रजातंत्र
देश और दुनिया।

6.
खून के समुंदर में
सिक्के रखे है
सिक्कों पर रखी है कुर्सी
कुर्सी पर रखा हुआ
तानाशाह
एक बार फिर
क़त्ले-आम का आदेश देता है।

7.
अविचल रहती है कुर्सी
मांगों और शिकायतों के संसार में
आहों और आंसुओं के
संसार में अविचल रहती है कुर्सी
पायों में आग
लगने
तक।

8.
मदहोश लुढ़ककर गिरता है वह
नाली में आंख खुलती है
जब नशे की तरह
कुर्सी उतर जाती है।

9.
कुर्सी की महिमा
बखानने का
यह एक थोथा प्रयास है
चिपकने वालों से पूछिये
कुर्सी भूगोल है
कुर्सी इतिहास है।

गोरख पाण्डेय
(1980)

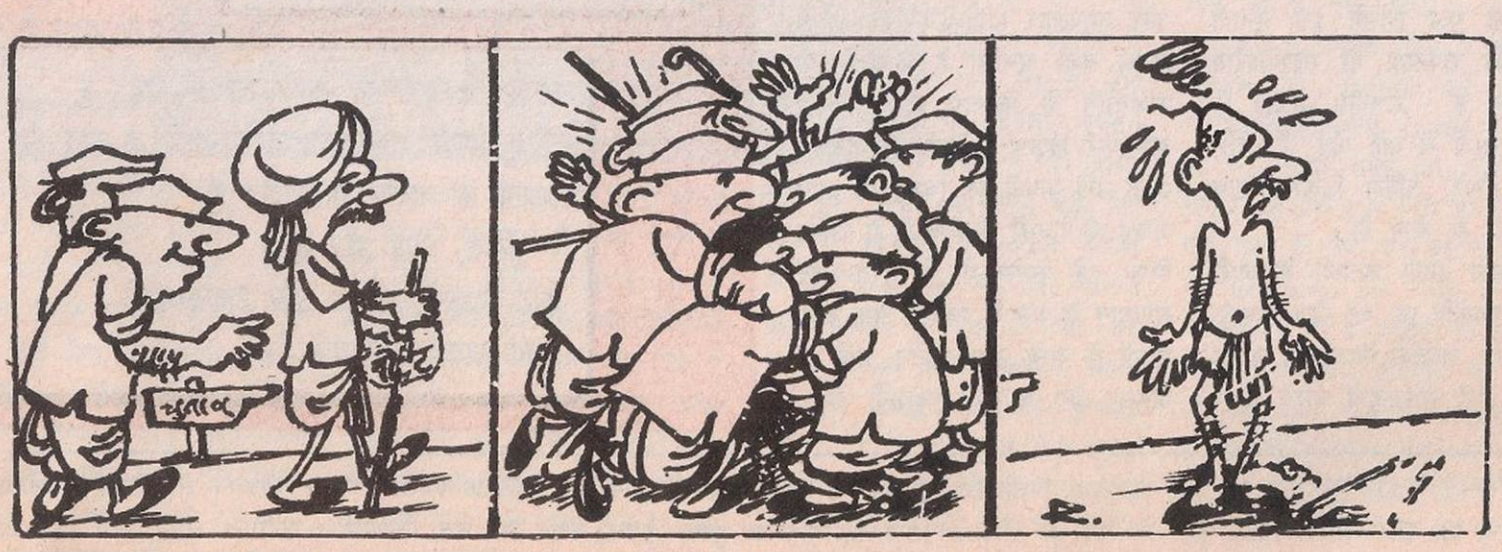

प्रदूषण नियन्त्रण कानून की आड़ में मजदूरों की छंटनी

निष्पक्ष न्यायपालिका की पूंजीवादी पक्षधरता

श्रमिक विरोधी नयी आर्थिक नीतियों को प्रदूषण नियन्त्रण के महान सुधारवादी खोल के भीतर ढंक कर सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के तहत यदि अमल में लाया जाये तो भला किसी को क्योंकर एतराज होगा। हजारों मजदूर मारे जायेंगे तो क्या हुआ, पर्यावरण तो साफ सुथरा हो जायेगा (!)। यदि सुप्रीम कोर्ट ने मजदूरों को बर्बाद-तबाह करने को न्यायपूर्ण करार दे दिया है तो अन्याय की बात करने वाला सनकी ही हो सकता है। इस देश के श्रमिक नेताओं की आस्था आज भी न्यायपालिका में है, पिछले दिनों तो इसे और मजबूत करने के कई उदाहरण सामने आये। कई भ्रष्ट अफसरों और नेताओं को भी नहीं बख़्सा गया। न्यायपालिका की सक्रियता (ज्युडिशियल एक्टिविज़्म) की तारीफ में पूंजीवादी लेखकों ने सारी पत्र-पत्रिकाए रंग डाली। ईश्वर से चूक हो सकती है, सुप्रीम कोर्ट से नहीं।

अन्य किसी बात का अपवाद हो सकता है लेकिन इस सच का कोई अपवाद नही है कि राज्यसत्ता पर जो वर्ग काबिज होता है उसका हित ही सर्वोपरि होता है। राज्य की सभी संस्थाओं, अंगो-उपांगों यहां तक की समाज कल्याण की नीतियों तक को उसी वर्ग की सेवा करनी पड़ती है। आज ये सब पूंजीपति वर्ग की सेवा में खड़े हैं चाहे इनकी निष्पक्षता का कितना ही भ्रम खड़ा किया जाय। जब भी पूंजी और श्रम का टकराव होता है तो सत्ता के सभी अंग सारे मुखौटे उतारकर पूंजी के पक्ष में खड़े हो जाते हैं।

दिल्ली में 168 उद्योगों को बन्द करने के फैसले में उपरोक्त सच एकदम उभर कर आ जाता है। इनमें से अधिकांश मिलों को मालिक खुद बन्द करना चाहते थे क्योंकि अब वे अपनी पूंजी अधिक मुनाफा देने वाले कार्यों में लगाने और इन मिलों की जमीन को बेचकर मालामाल होने का अवसर पाना चाहते थे। यदि ये खुद तालाबन्दी करते तो मजदूरों के विरोध और श्रम कानूनों के तहत इन्हें काफी मुआवजा देना पड़ता। यह गलती 1989 में डी०सी०एम० के मालिकों ने की थी और उन्हें कानूनी मुआवजे के अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट के आदेश के तहत छह साल के वेतन के बराबर श्रमिकों को मुआवजा देना पड़ा।

पूंजीपतियों ने ऐसी तरकीब निकाली कि सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। इनकी पुरानी मिलों में होने वाले खतरनाक प्रदूषण को जब कुछ पर्यावरणवादी संगठनों ने मुद्दा बनाया और इसे अदालत में ले गये तो इनकी बांछें खिल गईं। हो सकता है कि इन संगठनों की गति को तेज करने के लिए उद्योगपतियों ने पीछे से मदद भी की हो। इस तरह के सुधारवादी प्राणियों का आजकल देश में बाहुल्य हो गया है जो सरकार और पूंजीपतियों की मदद से सामाजिक कार्य का नाटक करते हुए कुल मिलाकर पूंजीवाद का हित साधते हैं। मिलों से होने वाले प्रदूषण का भी सबसे ज्यादा शिकार श्रमिक होते थे और पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर भी उन्हीं की बलि चढ़ाई गई।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले की बातें गौरतलब हैं। 30 नवम्बर, 96 तक 168 कारखानों को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र से कहीं और चले जाना है। जो कारखाने स्थानान्तरण में असफल रहेंगे उनके कर्मचारियों को और जो कर्मचारी कारखाने के साथ स्थानान्तरित नहीं होंगे उन्हें 30 नवम्बर से छंटनी हुआ माना जायेगा बशर्ते वे एक साल से ज्यादा समय से काम पर रहे हों। उन्हें औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत मुआवज़ा मिलेगा। इसके अलावा उन्हें एक साल के वेतन के बराबर अतिरिक्त मुआवज़ा भी दिया जायेगा।

अब भला ऐसा कौन पूंजीपति होगा जो इस वरदान का लाभ नही उठायेगा। सारे के सारे 168 उद्योग बन्द कर दिये जायेंगे। मजदूरों को मुआवज़े में नहीं के बराबर रकम देकर ये मालिक मनमाना लाभ अर्जित करेंगे। हजारों मजदूर सड़कों पर जिल्लत की जिन्दगी जीते हुए मरने को छोड़ दियें जायेंगे। यह है खुले पूंजीवाद के युग का सच। 1989 के डी०सी०एम० की बन्दी के मामले की ओर सुप्रीम कोर्ट का ध्यान आकर्षित कराने की मजदूरों की कोशिश नाकाम हो गयी। 1989 के फैसले में अदालत ने छः साल का अतिरिक्त मुआवजा मंजूर किया था। यदि मालिक अपनी इच्छा से तालाबन्दी करते तो कपड़ा मंत्रालय की पुर्नवास योजना के तहत सरकार को मजदूरों को डेढ़ साल का वेतन देना पड़ता। नयी चाल से सरकार भी इस खर्च से बच गयी।

सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई के दौरान डी.सी.एम. के साथ मजदूर यूनियनों के उस समझौते का उदाहरण कई बार पेश किया गया। उस फैसले को उसी अदालत ने मंजूरी दी थी जिसने मौजूदा फैसला दिया है। मगर सुनवाई के दौरान अदालत ने मजदूरों का पक्ष सुना ही नहीं। अदालत ने मजदूर नेताओं को आश्वस्त किया था कि उनका पक्ष भी सुना जाएगा। लेकिन अब बगैर उनकी बात सुने अदालत का फैसला आ जाने से मजदूर नेता हैरान हैं।

यह है छटनी का नायाब तरीका। मालिक लोग अपने अपराध के कानूनी और नैतिक दायित्व से पूरी तरह मुक्त। यह तरीका पूरे देश में अपनाया जा रहा है। इसका प्रहार सबसे निचले तबके के मुख्यतः शारीरिक श्रम में लगे मजदूरों पर सबसे अधिक है। कपड़ा मिले, जूट मिलें, सीमेन्ट, चूना कारखाने, चमड़ा उद्योग आदि इसके शिकार बन रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण को विषाक्त बनाने वाली रसायन कम्पनियों और पूरे पर्यावरण को नष्ट करने वाले बांधों के बनने, साम्राज्यवादियों द्वारा भारत की प्राकृतिक सम्पदा की लूट पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लागू होता। कारण स्पष्ट है। श्रम केन्द्रित कारखानों में मुनाफा पूरी तरह श्रम शक्ति की लूट की दर बढ़ाते जाने पर निर्भर करता है। यहां पर यह दर बढ़ाने का एक मात्र उपाय है मजदूरी कम की जाय और काम के घंटे बढ़ाये जायें। पूंजी केन्द्रित कारखानों में यह काम अधिक पूंजी निवेश करके नयी मशीनों द्वारा श्रम की उत्पादकता बढ़ा कर किया जाता है। श्रम केन्द्रित मिलों में प्रदूषण नियन्त्रण के नाम पर छंटनी करना और श्रमिक आंदोलनों पर अंकुश लगाना मुनाफा बढ़ाने का सुविधाजनक रास्ता है।

आज यह छिपा हुआ तथ्य नहीं है कि प्रदूषण और पर्यावरण विनाश के लिए पूंजीवाद और उसकी मुनाफे की ठवस जिम्मदार है। इसे अब तो पूंजीवादी बुद्धिजीवी भी स्वीकार करते है। अतः बिना पूंजीवाद के विनाश के पर्यावरण का विनाश रोका ही नहीं जा सकता। जब तक पूंजीवाद रहेगा, वह पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर श्रमिकों का ही विनाश करेगा।

बदली हुयी वैश्विक परिस्थितियों में क्रांतिकारी श्रमिक आंदोलन को, पर्यावरण सुरक्षा के आन्दोलन को अपने हाथ में लेना होगा तभी पृथ्वी की इस अपूरणीय क्षति को रोका जा सकता है। साथ ही, आज यह बहुत जरूरी है कि श्रमिक वर्ग न्याय प्रणाली के दोहरे चरित्र को समझे। पूंजीवादी जनतंत्र के सभी अंग उपांग सिर्फ और सिर्फ पूंजीवाद की हिफाजत के लिए हैं न कि श्रमिक वर्ग पर होने वाले अन्याय का खात्मा करने के लिए। आज पूंजीवादी प्रचारतन्त्र से इस व्यवस्था के प्रति एक नयी आस्था पैदा करने की कोशिश की जा रही है, उसको बेनकाब करना श्रमिक आन्दोलन को आगे बढ़ाने का एक जरूरी कार्यभार है।

इलेक्शन या इंकलाब?

(पेज 1 से आगे)

की आम सहमति की नीतियां हैं और वे उनके वर्तमान दौर के हितों को बहुत ही मुखरता से अभिव्यक्त करती हैं।

संसदीय लोकतंत्र का यह चुनावी नाटक भी आम जनता के खिलाफ पूंजीपति वर्ग का एक युद्ध है - धोखों-फरेबों से लड़ा जाने वाला एक युद्ध ऐसा युद्ध जिसमें इस चुनावी नाटक की सफलता ही सत्ताधारियों की विजय है - संसदीय अखाड़े के इस पैंतरेबाजी में चाहें कोई भी जीते, कोई भी हारे, लेकिन शिकस्त आम जनता की ही होनी है।

पिछले आधी शताब्दी से जारी चुनावी राजनीति का यह खेल तबतक जारी रहेगा, जबतक मेहनतकश जनता के हितों की नुमाइन्दगी करने वाली क्रान्तिकारी राजनीति का झण्डा फिर से आगे नहीं बढ़ेगा, जबतक कि देश भर के सच्चे सर्वहारा क्रान्तिकारी एकजुट होकर साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति को अंजाम देने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे। यह राह चाहे जितनी कठिन और लम्बी हो, वास्तविक मुक्ति की राह यही है।

मजदूर साथियो, नौजवान दोस्तो और जनपक्षधर बुद्धिजीवियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है - पूंजीवादी राजनीति के खिलाफ एक सशक्त क्रान्तिकारी विकल्प के निर्माण की चुनौती। आज उन्हें अपनी इस चिन्ता को आम जनता की रोजमर्रे की चिंताओं से जोड़ना होगा। उसे समस्याओं के तुरत-फुरत समाधान के भ्रम से उबरना होगा और संघर्षों के लम्बे और कठिन रास्ते में अग्रसर होने में मदद पहुंचानी होगी।

असली चुनाव
इस या उस
पूंजीवादी चुनावी पार्टियों
के बीच नही
बल्कि
इंकलाबी राजनीति
और पूंजीवादी राजनीति
के बीच है।
चुन लो
चुनावी मृगमरीचिका में जीना है
या
इंकलाब की तैयारी की
कठिन राह पर चलना है?

मेहनतकश साथियों! नौजवान दोस्तो!
सोचो
50 सालों तक
चुनावी मदारियों से
उम्मीदें पालने के बजाय
यदि हमने इंकलाब की राह
चुनी होती
तो भगतसिंह के सपनो का भारत
आज एक हकीकत होता।

संसद-विधानसभाएं, बहसबाजों के अड्डे है
ये पूंजीवादी राज्यसत्ता के दिखाने के दांत है।
जनता को चबाने वाले दांत है
- पुलिस, फौज और जेल।
कोर्ट-कचहरी, कानून और अफसरशाही
इसके जबड़े और पंजे है।

चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर आओ!
क्रान्तिकारी राजनीति की अलख जगाओ!!

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः मुद्रण प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ सम्पादकीय कार्यालयः द्वारा श्री बी.डी. सक्सेना, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ, सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ